ORIGINAL RESEARCH PAPER

Sanskrit

सृष्टि की उत्पत्ति विषयक जैन मान्यताएं

KEY WORDS:

डॉ. शिवांगना शर्मा सह आचार्य संस्कृत विभाग बाबा नारायणदास राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चिमनपुरा शाहपुरा जिला जयपुर राजस्थान

ABSTRACT

जैन दर्शन सृष्टि का कर्ता–धर्ता–हर्ता ईश्वर को नही मानता। यह विश्व अनादि और अनन्त है। इसे किसी ने न तो बनाया और न कोई सर्वथा नष्ट करता है। परिणमन वस्तु का स्वभाव है अतः परिणमन सदा हुआ करता है। छः द्रव्यों में से जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों का संयोग–वियोग सदा चलता रहता है। इसी का नाम संसार है। जैसे खान से सोना मैल मिट्टी को लिये हुए ही निकलना है उसी तरह संसार में अनादि काल से जीव अशुद्ध दशा के कारण भ्रमण करते है। यह अगृहीत मिथ्यात्व है। इसके साथ जीव में नवीन कर्मबन्ध से गृहीत मिथ्यात्व आता है। क्योंकि आन्तरिक अशुद्धता के बिना नवीन कर्म का बन्ध नही होता। यदि शुद्ध जीव भी बन्धन में पड़ने लगे तो बन्धन को काटने का उपदेश और उसका आचरण ही व्यर्थ हो जाएगा। इसलिए जीव का प्रारम्भिक रूप जो अनादि है अशुद्ध ही है। फिर कर्म के निमित्त से जीव सकषाय होता है। पूर्व में बद्ध कर्म के उदय से जीव के रागादि भाव होते है और रागादि भावों को निमित करके जीव के नवीन कर्म का बन्ध होता है।[1]

पंचस्तिकाय – में जीव और कर्म के इस अनादि सम्बन्ध को जीवपुद्गल कर्मचक्र के नाम से अभिहित करते हुए लिखा है –

जो जीव संसार में स्थित है अर्थात जन्म और मरण के चक्र में पड़ा है उसके राग और द्वेषरूप परिणाम होते है। परिणामों में नये कर्म बन्धते है। कर्मो से गतियों में जन्म लेना पड़ता है, जन्म लेने से शरीर होता है। शरीर में इन्द्रियाँ होती है। इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण होता है। विषयों के ग्रहण से राग व द्वेषरूप परिणाम होते है। इस प्रकार संसार रूपी चक्र में पड़े हुए जीव के भावों से कर्म और कर्म से भाव होते रहते हैं। यह प्रवाह अभव्य जीवों की अपेक्षा अनादि अनन्त है और भव्य जीव की अपेक्षा सादिमात्र है।[2]

जैन मान्यता है कि यह विश्व छः मौलिक द्रव्यों से बना हुआ है – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश। इसमें जीव या आत्मा को अनन्तचतुष्टयी बताया गया है। यही आत्मा लोकान्त में सिद्धशीला पर विराजता है। लेकिन संसारी आत्मा की गति विचित्र है। वह अनादि काल से चारों गतियों में भटक रहा है। उसका उद्देश्य यह है कि वह अपने शुभ प्रयत्नों से कर्म–बन्धों से विलग होकर अनन्तचतुष्टयी रूप को प्राप्त कर परम सुख को प्राप्त करे और सिद्ध शिला पर विराजे। अपनी बुद्धि के कारण मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है और वही अपने प्रयत्नों से यह लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

हिन्दू पुराणों के अनुसार ब्रह्मा दिन में सृष्टि का निर्माण करते हैं और रात्रि में उसे विलीन करते है। इसमें विश्व के समस्त पदार्थ एक स्थान पर केन्द्रित हो जाते है लेकिन बह्मा की प्रत्येक 100 वर्ष की आयु पूर्ण होने पर महाप्रलय होता है जबकि विश्व की प्रत्येक वस्तु अपघटित होकर बह्मा में विलिन हो जाती है। इसके बाद पुनः सृष्टि का प्रारम्भ बह्मा करता है। इस प्रकार नैमित्तिक एवं महाप्रलय तथा सृष्टि के निर्माण की प्रक्रिया का चक्र चलता रहता है।

न्याय और वैशेषिक दर्शनों में ईश्वर को सृष्टि का रचयिता माना गया है[3] ये इस सम्बन्ध में निम्न युक्तियॉ देते है – नैयायिकों का कहना है कि सृष्टि का कोई कर्ता अवश्य होना चाहिए क्योंकि वह कार्य है। कुछ ईश्वरवादी पाश्चात्य विद्वान कहते है कि यदि ईश्वर न होता तो उसके अस्तित्व की भावना ही हमारे हृदय में जागृत न होती। वैदिक जनों का कहना है कि बिना किसी सचेतक नियन्ता के सृष्टि की इतनी अद्भुत व्यवस्था सम्भव नहीं थी।

ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के युग में सृष्टि के सम्बन्ध में वर्णन आता है – प्रजापति ने एक से अनेक होने की इच्छा की। उसके लिए उसने तप किया। जिससे क्रमशः धूप, अग्नि, प्रकाश आदि की उत्पत्ति हुई। उसी के अश्रुबिन्दु के समुद्र में गिर जाने से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई अथवा उसके तप से ब्राह्मण व जल की उत्पत्ति हुई, जिससे सृष्टि बनी। उपनिषद् युग में कही तो असत्, मृत्यु, क्षुधा आदि से जल, पृथ्वी आदि की उत्पत्ति मानी गयी है कही बह्मा से और कहीं अक्षर से सृष्टि की रचना मानी गयी है।

इसके विपरीत जैन मान्यता में विश्व का चक्र उत्सर्विणी और अवसर्पिणी कालों के रूप में निरन्तर चलता रहता है। अवसर्पिणी काल के अन्त में 49 दिन में खण्ड प्रलय के समान स्थिति बनती है। लेकिन इसके बाद 35 दिन में जीवन पुनः पूर्ववत् हो जाता है। निष्कर्षतः जैन मान्यता है कि सृष्टि में खंड प्रलय ही होगा विश्व का अन्त नही। विश्व अनादि और अनन्त है जिसमें सृष्टि व खंड प्रलय का चक्र चलता रहता है।

जैन–दर्शन ईश्वर की सत्ता सृष्टि के कर्त्ता रूप में स्वीकार नहीं करता जैन–ईश्वर जगत का कर्ता, धर्ता, हर्ता नहीं है। इसमें ईश्वर का अर्थ है विकार व सारे बन्धनों से रहित परमात्मा। ईश्वर एक न होकर अनेक है और कई हो सकते है। जैन धर्म में कर्म–बन्धन से मुक्त हुए जीव ही ईश्वर है।[4]

सन्दर्भ सूची

1 सस्कृत–हिन्दी कोश, पृष्ठ 883
2 बारत अणुवेक्खा, गाथा – 39
3 तत्त्वार्थसार, 3/4
4 तत्त्वार्थराजवार्तिक, 5/29–30